लोक के नजदीक : 'गीता पर हाथ रख कर'

असित कुमार मिश्र
शोधार्थी – जयप्रकाश विश्वविद्यालय
छपरा, बिहार
मो॰ – 7897176716
ईमेल – asitkmishra1@gmail.com

थाना - पुलिस, कोर्ट-कचहरी ऐसे 'अश्पृश्य' शब्द हैं, जो अगर साहित्य में प्रयुक्त हों तो आम जन-मानस उन अक्षरों से भी बच कर निकल जाना चाहता है। यही कारण है कि 'कैलाश गौतम' का एक गीत - "कचहरी न जाना" एक समय लोक में अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ था। प्राय: थानेदार का रूखा - सूखा व्यवहार, वकीलों के दाँव - पेंच और जज साहेबान के डरावने काले लबादे से लोगों को दो-चार होना ही पड़ता है। आम जनता यह मान कर चलती है कि ये लोग और इनकी अदालती भाषा हमारे बीच की नहीं है और इनसे एक वाजिब दूरी बना कर रहने में ही भलाई है।जबकि दूरियाँ हमेशा दुराव पैदा करतीं हैं और लोक की ताकत को कमजोर भी।

इस बार आम जनता के नजदीक आने की पहल खुद न्यायिक पदाधिकारी मानवेन्द्र मिश्र ने की है। और इनके कथा-संग्रह का नाम है - "गीता पर हाथ रख कर"।

झूठ, फरेब, चालाकी, मक्कारी और जालसाजी के इस दौर में यह बेहद चर्चित और लोक से जुड़ा बचाव है - "मैं 'गीता पर हाथ रख कर' कसम खाता हूँ कि जो कहूँगा सच कहूँगा"।

शीर्षक ही नहीं इस संग्रह की प्राय: सभी कहानियाँ लोक से जुड़ी हैं और इनके केंद्र में वही आम आदमी है जो न्यायिक - प्रक्रिया में तारीख दर तारीख अदालत की सीढ़ियाँ चढ़ता रहता है इस उम्मीद में कि शायद आज उसके हक में फैसला आएगा।

संग्रह की पहली कहानी" कमीना" में ही हमें एक ऐसे गुस्सैल न्यायाधीश के दर्शन होते हैं जिसका पूर्व पेशकार उसे 'वर्किंग टाइम' में चाह कर भी फोन नहीं कर पाता और जब कथांत उसी न्यायाधीश के आँसुओं से होता है तो यकीन नहीं होता कि एक जोड़ी गुस्सैल आँखों के पीछे एक आदमी भी है।

व्यवस्था के फरेब में कभी न कभी घायल हुआ पाठक जब कहानी में पाता है कि जज साहब प्रायः अनजान नंबरों वाले फोन इसलिए नहीं उठाते कि एक बार फर्जी बैंक मैनेजर बनकर और ओटीपी भेज कर उनके खाते से भी साढ़े सत्रह हज़ार रुपये निकाले जा चुके हैं तो उसे लगता है कि कटघरे में खड़े आम आदमी और सबसे ऊँची कुर्सी पर बैठे आदमी में कोई फर्क नहीं है।

मानवेन्द्र मिश्र का लेखकीय - कौशल इसी बात में निहित है कि इनके यहाँ कुर्सी और कटघरा एक बराबर है।

इस खंडित समय में जब संस्थाएँ, परिवार, घर - व्यक्ति ही नहीं आत्मा तक कई हिस्सों में बँट गई है। ऐसे समय में किसी टूटते हुए परिवार को जोड़ने की लगातार कोशिश करते हुए आखिर में पति-पत्नी को एक में मिलाकर फिर से "दम्पती" बनने की प्रक्रिया को एक आम पाठक के रूप में देखना एक सुंदर सपने के पूरा होने जैसा ही सुंदर है। यहाँ लेखक, पाठक और कहानी के पात्र एक में मिल जाते हैं। यह मानवेन्द्र मिश्र का अपना कौशल है जहाँ कहानी - कहानी के रूप में नहीं बल्कि अपने घर - परिवार की सच्चाई के रूप में बदल जाती है।

इस कथा - संग्रह में परिवार की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई 'बच्चे' भी हैं। जो कई बार अत्यधिक प्यार तो कई बार उपेक्षा के कारण असामाजिक कार्यों की तरफ प्रवृत्त हो जाते हैं और कई बार इनका वयस्क अपराधियों द्वारा इस्तेमाल भी कर लिया जाता है। ऐसे

ISSN : 2583-2948

बच्चों को समाज की मुख्य धारा में पुनः शामिल करने की न्यायिक और सामाजिक प्रक्रिया जटिल और काफ़ी चुनौतीपूर्ण होती है लेकिन इन कहानियों में ऐसे 'भटके हुए बच्चों' को समाज में पुनर्स्थापित हुए देखना लेखक के लोकमंगल की कामना की पूर्ति करता है।

कथा - संग्रह की एक - दो कहानियों में न्याय - नियमों की स्थापना और कथा - तत्वों की अवहेलना से बचा जा सकता था लेकिन यहाँ लेखक द्वारा आम पाठकों का बाल मनोविज्ञान और बाल अधिकारों से परिचय कराने की कोशिश जान पड़ती है।

इस संग्रह में कुल पंद्रह कहानियाँ हैं और इन्हें प्रकाशित किया है हर्फ़ पब्लिकेशन ने जिसका मूल्य है 150 रुपये।

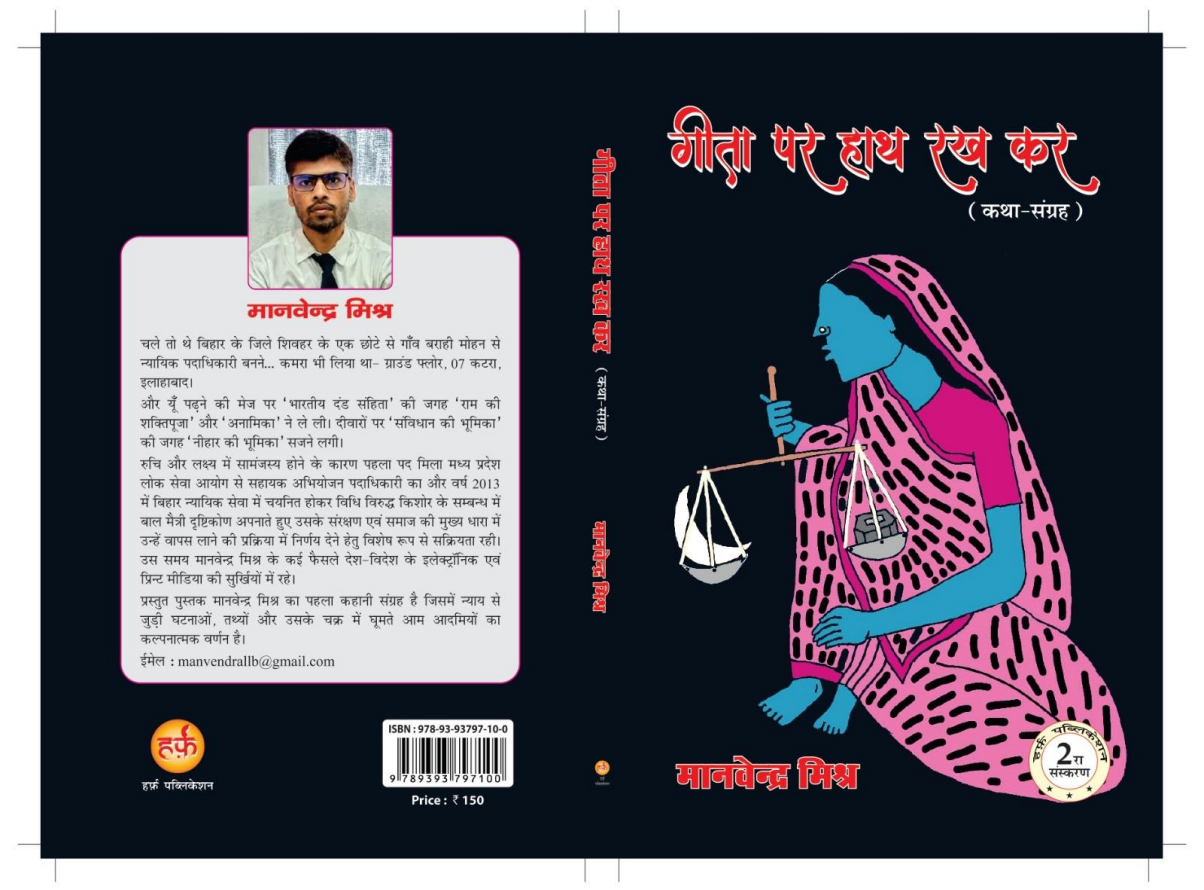

anukarsh@alliance.edu.in